R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

मूल्य-7 रुपये, वर्ष-24, अङ्क-2 फरवरी 2024

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (रजि.), अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख स्वसमाचार पत्र

मङ्गलायतन

आदरणीय बालब्रह्मचारी रवीन्द्रजी 'आत्मन'

ज्ञानमय लोक है मेरा, ज्ञान ही रूप है मेरा।
परम निर्दोष समतामय, ज्ञान जीवन हमारा है॥

देह संयोग :
23 जनवरी 1952

देह वियोग :
18 जनवरी 2024

बालब्रह्मचारी रवीन्द्रजी 'आत्मन' की विभिन्न मुद्राएँ

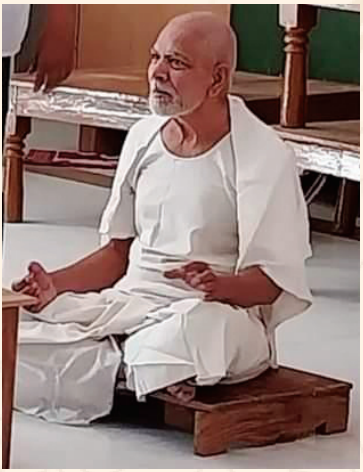

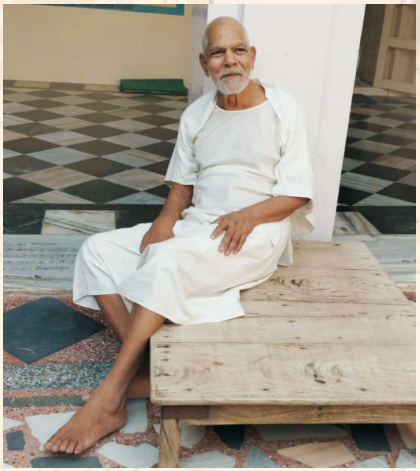

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (रजि.), अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-24, अङ्क-1 (वी.नि.सं. 2550; वि.सं. 2080) फरवरी 2024

मैं श्री राम होना चाहता हूँ -

मैं राम होना चाहता हूँ, श्री राम होना चाहता हूँ,
तोड़कर अब सारे बंधन भगवान् होना चाहता हूँ।
ऋषभ के आदर्श को स्वीकार करना चाहता हूँ
भरत सा निर्लिप्त जीवन आज जीना चाहता हूँ। मैं राम होना...
अजित होकर आत्मा में विश्राम लेना चाहता हूँ,
सुमतिवत् शुद्धात्मा का राम होना चाहता हूँ। मैं राम होना....
तोड़कर अब सारे बंधन अनंत होना चाहता हूँ,
भोग के इस सरोवर में पद्म होना चाहता हूँ। मैं राम होना....
ऋषि मुनि की इस धरा पर मुक्त जीना चाहता हूँ,
दया अहिंसा से जगत को अवध करना चाहता हूँ। मैं राम होना....
नगरी विनीता की धरा से निरहंकार होना चाहता हूँ,
शिथिल हों अब सारे बंधन अभिनंदन होना चाहता हूँ। मैं राम होना....
सुव्रत मुनि के आचरण का अंजाम होना चाहता हूँ,
संसार सागर पार अभिराम होना चाहता हूँ। मैं राम होना....
अनंत जन्म के कर्मधनुष का शीघ्र भंजन चाहता हूँ।
मुक्ति सीता का वरणकर निष्काम होना चाहता हूँ। मैं राम होना....
देख नश्वर जगत को जो स्वयं वैरागी हुए,
उस विरागी दशरथ की संतान होना चाहता हूँ। मैं राम होना....
तोड़कर अब सारे बंधन निष्काम होना चाहता हूँ।
सम्यक्त्व अयोध्या की धरा पर ज्ञानमंदिर चाहता हूँ,
और उसके भाल पर शिखर होना चाहता हूँ। मैं राम होना....
तोड़कर मैं सारे बंधन श्री राम होना चाहता हूँ।
प्राप्तकर शुद्धात्मा खुद में बरसना चाहता हूँ,
मांगीतुंगी के शिखर से सिद्ध होना चाहता हूँ। मैं राम होना....
तोड़कर अब सारे बंधन भगवान् होना चाहता हूँ,
मैं श्री राम होना चाहता हूँ-2

प्रो.डॉ. अनेकांत कुमार जैन, नई दिल्ली

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि०वि०
सह सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, मङ्गलायतन

क्या - कहाँ

प्रथमानुयोग	धर्म और अधर्म	5
द्रव्यानुयोग	समयसार नाटक	10
	स्वानुभूतिदर्शन :	16
प्रथमानुयोग	हस्तिनापुर का अतिशयकारी इतिहास	19
करणानुयोग	नरकों के प्रमाण	21
प्रथमानुयोग	कवि परिचय	24
करणानुयोग	श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान	25
द्रव्यानुयोग	बालवाटिका	28
	जिस प्रकार-उसी प्रकार	29
	समाचार-दर्शन	30

शुल्क :
एक प्रति : 07.00 ₹
आजीवन (15 वर्ष) : 1000.00 ₹

प्रथमानुयोग

आगामी तीर्थधाम चिदायतन के पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन प्रसंग में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा पंचकल्याणक पर किए गए प्रवचनों का धारावाहिक प्रकाशन किया जा रहा है।

गर्भकल्याणक प्रवचन

धर्म और अधर्म

देखो! यह पञ्च कल्याणक महोत्सव के दिन हैं। वस्तुतः तो सर्वज्ञ भगवान कैसे होते हैं और उन्होंने आत्मा का कैसा स्वरूप कहा है?—यह पहिचानकर, अपनी **आत्मा का भान प्रगट करना ही महोत्सव** है और वही कल्याण का मार्ग है। सुपात्र जीवों को देव-गुरु-धर्म की प्रभावना का तथा जिनमन्दिर बनाने का शुभभाव होता है परन्तु वहाँ अकेले राग का हेतु नहीं है, उनका लक्ष्य तो अन्दर में वीतरागभाव के पोषण का होता है।

आत्मा का स्वभाव रागरहित है, उस स्वभाव के लक्ष्य बिना जीव ने पूर्व में पञ्च कल्याणकादि के शुभभाव तो अनन्त बार किये हैं और उन्हीं में धर्म मान लिया है परन्तु आत्मा के भान बिना उसका भवभ्रमण नहीं मिटा है। यहाँ तो आत्मा का अपूर्व भान प्रगटकर भवभ्रमण कैसे मिटे—यह बात है।

भगवान श्री कुन्दकुन्दस्वामी के पट्ट शिष्य श्री जयसेनाचार्य ने प्रतिष्ठा पाठ बनाया है। श्री कुन्दकुन्द प्रभु ने उन्हें प्रतिष्ठा पाठ बनाने की आज्ञा प्रदान की थी। इस प्रकार लगभग दो हजार वर्ष पूर्व श्री चन्द्रप्रभ भगवान की प्रतिष्ठा के लिए गुरु कुन्दकुन्दस्वामी की आज्ञा से श्री जयसेनाचार्य ने दो दिन में यह प्रतिष्ठा पाठ बनाया था; इस कारण श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने उनका नाम 'वसुबिन्दु' रखा। वसु, अर्थात् आठ कर्म और बिन्दु, अर्थात् उनका नाश करनेवाला—इस प्रकार 'वसुबिन्दु' का अर्थ आठ कर्मों का नाश करनेवाला है।

दो हजार वर्ष पूर्व चन्द्रप्रभ भगवान की प्रतिष्ठा के लिए यह 'वसुनन्दि प्रतिष्ठापाठ' बना, इसका उपयोग आज इस सौराष्ट्र में यहाँ चन्द्रप्रभ भगवान की प्रतिष्ठा के लिए हो रहा है। इस प्रकार सहज ही एक सुमेल हो गया है।

इस प्रतिष्ठा पाठ में जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा करानेवाले श्रावक का वर्णन आता है। वह श्रावक, श्रीआचार्यदेव के पास जाकर आज्ञा माँगता है कि हे प्रभो! मैं इस लक्ष्मी को, धनादि सम्पत्ति को कुलटा के समान और अनित्य जानता हूँ। हे स्वामी! इस अनित्य लक्ष्मी के प्रति राग घटाकर, उसका सदुपयोग किस प्रकार करूँ? मेरी भावना श्री जिनमन्दिर बनवाकर, श्री अरिहन्त भगवान के पञ्च कल्याणक महोत्सव कराने की है। इस प्रकार मैं लक्ष्मी का सदुपयोग करके अपना जीवन सफल करूँ—इसके लिए हे नाथ! आज्ञा प्रदान करो। तत्पश्चात् उसे आज्ञा प्रदान करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि धन्य है, तू अपने कुल में सूर्य समान है।

देखो! वस्तुतः आत्मा परद्रव्य का ग्रहण-त्याग नहीं कर सकता। लक्ष्मी इत्यादि जड़ है, आत्मा उसकी क्रिया नहीं कर सकता तो भी प्रतिष्ठा पाठ में लक्ष्मी के सदुपयोग की बात आयी है—यह व्यवहार कथन है। वहाँ यह नहीं बताना है कि आत्मा, लक्ष्मी इत्यादि की क्रिया कर सकता है परन्तु वहाँ राग घटाने का तात्पर्य है।

शास्त्र में निमित्त की अपेक्षा से कथन तो आते हैं परन्तु वस्तुस्वरूप को लक्ष्य में रखकर उनके भाव समझने चाहिए। रागरहित आत्मस्वभाव को जानकर, उसमें स्थिरता करना ही समस्त शास्त्रों का तात्पर्य है। शास्त्रों में सूत्र का तात्पर्य प्रत्येक सूत्रानुसार अलग होता है। कई बार व्यवहार का, निमित्त का अथवा संयोग का ज्ञान कराने के लिए अनेक प्रकार के कथन आते हैं परन्तु शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागभाव के पोषण का ही है। आत्मा, परद्रव्य की क्रिया कर सकता है—यह बतलाना शास्त्र का प्रयोजन नहीं है। ऐसा होने पर भी, जो जीव विपरीत समझकर रागभाव के पोषण का आश्रय निकालता है, वह जीव तो वस्तुतः शास्त्र के आशय को समझा ही नहीं है।

आत्मा अपने रागरहित ज्ञानस्वभाव के भान बिना अनादि से राग-द्वेष-मोहभाव का कर्ता होकर संसार में परिभ्रमण करता है। आत्मा का भान करके शुद्धोपयोग प्रगट करने से ही वह परिभ्रमण मिटता है। अशुद्ध उपयोग, संसार का और शुद्ध उपयोग, मुक्ति का कारण है; इस कारण धर्मी जीव उस

अशुद्धोपयोग का विनाश करके शुद्ध उपयोग से आत्मा में लीन रहने की भावना करता है—यह वर्णन प्रवचनसार की गाथा 159 वीं में किया है।

आत्मा स्वयं-सिद्ध असंयोगी वस्तु है; न तो उसे किसी ईश्वर ने उत्पन्न किया है और न वह नाश होकर किन्हीं संयोगों में मिल जाता है। आत्मा, स्वतन्त्र चैतन्यस्वभाव की मूर्ति है; उसको जो परद्रव्य के लक्ष्य से शुभ या अशुभ उपयोग होता है, वह बन्धन है—अशुद्धता है; वह भाव, आत्मा के धर्म का कारण नहीं है। शुभ अथवा अशुभ दोनों भावों से आत्मा के स्वभाव का विकास न होकर बन्धन होता है और उससे आत्मा को शरीरादि परद्रव्यों का संयोग, अर्थात् संसार होता है।

शुभाशुभराग से रहित आत्मा के स्वभाव की पहिचान करके उसमें रमणता करना शुद्धोपयोग है, वही धर्म है और वह मोक्ष का कारण है। अशुद्ध उपयोग, परद्रव्य का अनुसरण करके होता है और उसके फल में भी परद्रव्य का ही संयोग होता है। शुद्धोपयोग, स्वद्रव्य का अनुसरण करके होता है और उसके फल में मुक्तदशा प्रगट होती है।

शरीर और कर्म तो अजीवतत्त्व है, उनमें जीव का धर्म नहीं है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुसङ्ग आदि भाव, पापतत्व है और देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति, जीवों की दया इत्यादि भाव, पुण्यतत्व है; इन पुण्य-पाप तत्वों में भी जीव का धर्म नहीं है। शुद्ध ज्ञानमय जीवतत्व के आश्रय से जो सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है, वही धर्म है।

जीव अनादि काल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है, उसमें अनन्त काल में यह मनुष्य देह पाकर यदि आत्मसन्मुखता नहीं करे और अभी सत् नहीं समझे तो जन्म-मरण का अन्त करने का प्रारम्भ भी नहीं होगा। पुण्य-पापरहित त्रिकाली चैतन्यमूर्ति आत्म-स्वभाव की पहिचान करके उसकी रुचि-प्रतीति और रमणता करना ही शुद्धोपयोग है और वही मुक्ति का कारण है। देव-गुरु इत्यादि पर की भक्ति का शुभभाव अथवा पर के अविनय का अशुभभाव—दोनों में परसन्मुखता है; इस कारण वे दोनों उपाधिभाव हैं, उनमें धर्म नहीं है।

प्रभु! तेरी चैतन्य जाति क्या है—वह यहाँ बताया जा रहा है। जो आत्माएँ अन्तरस्वभाव का भान करके, उसमें एकाग्रता द्वारा राग—द्वेष का अभाव करके पूर्ण परमात्मा हुए हैं, उन आत्माओं जैसी ही तेरी जाति है। उनमें से राग-द्वेष का अभाव हुआ; अत: राग-द्वेष तेरी जाति नहीं है। जैसे, पानी का मूल स्वभाव शीतलता है, उष्णता उसका स्वरूप नहीं है; उसी प्रकार जो आत्मा में मोह-राग-द्वेष की वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वे आत्मा का मूल स्वरूप नहीं है। आत्मा का मूल स्वरूप तो सिद्ध समान परिपूर्ण ज्ञानस्वरूप, राग-द्वेष रहित है। बहिर्लक्ष्य से होनेवाले शुभाशुभभावों से बाह्य संयोग मिलते हैं परन्तु स्वभाव नहीं मिलता। शुभाशुभभाव, आत्मा को आकुलतारूप दु:ख का ही कारण है। शुभाशुभभाव, परद्रव्य के संयोग का कारण है—यह कहना भी मात्र निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का कथन है।

पुण्य और पाप दोनों संयोगीभाव है, उनसे आत्मा को नया बन्धन होता है। जिस भाव से आत्मा को नया बन्धन हो, वह भाव धर्म नहीं हो सकता और जो भाव धर्म हो, वह नये बन्ध का कारण नहीं होता। यदि धर्मभाव से भी बन्धन होता हो तो ज्यों—ज्यों धर्म बढ़ता जाए त्यों—त्यों आत्मा को बन्धन भी बढ़ता जाएगा, तो फिर आत्मा की मुक्ति कब होगी? इसलिए धर्म कभी बन्धन का कारण नहीं होता। इसी प्रकार शुभराग भी बन्धन का कारण होने से उससे धर्म नहीं होता। यदि रागभाव, धर्म का कारण होता हो तो ज्यों—ज्यों राग बढ़े, त्यों—त्यों धर्म भी बढ़ता जाएगा, अर्थात् केवली भगवान को सर्वाधिक राग हो जाएगा, परन्तु ऐसा कभी नहीं होता।

तात्पर्य यह है कि जिस भाव से बन्धन होता है, उस भाव से धर्म नहीं होता और जिस भाव से धर्म होता है, उस भाव से बन्धन नहीं होता। जिस भाव से तीर्थङ्करनामकर्म का बन्धन होता है, वह भाव भी आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध भाव है, बन्धनभाव है और स्पष्ट शब्दों से कहा जाए तो वह भी अधर्मभाव है; कारण कि धर्मभाव के द्वारा कर्मों का बन्धन नहीं होता।

कोई कहे कि तीर्थङ्करनामकर्म बँधा, उस भाव से आँशिक धर्म तो है न?

तो कहते हैं कि नहीं; जिस भाव से तीर्थङ्करनामकर्म बँधता है, वह भाव आंशिक धर्म नहीं परन्तु आंशिक अधर्म है। यहाँ 'आंशिक अधर्म' किसलिये कहा—इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है —

जिस रागभाव से तीर्थङ्करनामकर्म बँधा, वह रागभाव तो अधर्म ही है, उसमें धर्म का कोई अंश नहीं है परन्तु तीर्थङ्करनामकर्म, सम्यग्दृष्टि को ही बँधता है; शुभभाव के समय सम्यग्दृष्टि को आत्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान है, उतने अंश धर्म है और जितना राग है, उतना अधर्म है। इस प्रकार ज्ञानी को राग के समय भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान के अंश हैं—यह बताने के लिए उसके राग को 'आंशिक अधर्म' कहा है। उसको राग के समय मिथ्यात्वरूप अधर्म नहीं है; इस कारण उसको 'आंशिक अधर्म' कहा है और मिथ्यादृष्टि तो उस राग को ही धर्म मानता है; इस कारण उसको आंशिक अधर्म नहीं, किन्तु पूरा-पूरा अधर्म है, धर्म जरा भी नहीं है।

सच्चे देव-गुरु की भक्ति, जीवों की अनुकम्पा इत्यादि का भाव शुभभाव है और सच्चे देव-गुरु से विरुद्धरूप कुमार्ग की श्रद्धा, कुश्रवण, कुविचार, कुसङ्ग तथा विषय-कषाय आदि के भाव, अशुभभाव हैं। यह शुभाशुभभाव आत्मा को परद्रव्य के संयोग का कारण है—इस कारण वह अधर्म है—अशुद्धभाव है तथा इन शुभाशुभभावों से रहित होकर आत्मा के ध्यान में लीन होना शुद्धभाव है—धर्म है और आत्मा को मुक्ति का कारण है। इसलिए अशुद्ध उपयोग का विनाश करने के लिए और शुद्धोपयोग द्वारा आत्मा में लीन रहने के लिये धर्मी जीव कैसा अभ्यास करता है—उसका वर्णन करते हुए आचार्य भगवान (प्रवचनसार, गाथा—159 में) कहते हैं कि —

अशुभोपयोग रहित न शुभ उपयुक्त हो परद्रव्य में
मध्यस्थ हो ज्ञानात्मक निज आत्मा ध्याता हूँ मैं॥

'अन्य द्रव्य में मध्यस्थ होता हुआ मैं, अशुभोपयोगरहित होता हुआ तथा शुभोपयुक्त नहीं होता हुआ ज्ञानात्मक आत्मा को ध्याता हूँ'—इस प्रकार परद्रव्य के संयोग का कारण जो अशुद्धोपयोग, उसके विनाश के लिए ज्ञानी अभ्यास करता है। यहाँ मुख्यरूप से मुनि की बात है। क्रमशः

द्रव्यानुयोग

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

कर्त्ता कर्म क्रिया द्वार प्रवचन

आत्मा अनादि-अनन्त सहज ज्ञानानन्द की मूर्ति है। जिसको उसका भान नहीं है और विपरीत दृष्टि है, उसको जैसे शराबी को शराब के नशे में श्रीखण्ड का स्वाद नहीं आता, उसको तो मैं दूध पीता हूँ -ऐसा लगता है; उसीप्रकार यह अनादि अज्ञानी भले ही वह त्यागी हो या भोगी ; परन्तु वह 'मैं अनादि-अनन्त सत्चिदानन्द मूर्ति हूँ' ऐसा आनन्द का स्वाद नहीं लेता, अपितु मैं पुण्य-पापरूप हूँ ऐसी मिथ्या दृष्टि का स्वाद लेता है, उसका हृदय अपने स्वभाव से शून्य है। इसलिए वास्तव में वह मुर्दा है। शुभाशुभभाव-क्रिया का भाव तो विकारी वृत्ति है, राग है; उसका स्वाद वह कोई आत्मा का स्वाद नहीं है। जो इस राग की क्रिया का कर्त्ता और भोक्ता होता है, वह अपने आनन्द के स्वाद के शून्य है। उसकी दृष्टि मिथ्या है और उसका ज्ञान भी अज्ञान है। 'यह ज्ञान है और यह राग है' इसप्रकार वह दोनों के स्वाद को भिन्न नहीं कर सकता।

लोगों को ऐसे स्वरूप का पता नहीं है और मानते हैं कि हम हमारे कल्याण के लिए व्रत करते हैं, तप करते हैं, महीने-महीने के उपवास करते हैं; परन्तु भाई! तुझे अपने स्वरूप का तो पता ही नहीं है। अपने स्वभाव का अनादर करके राग की क्रिया का आदर करता है, वह तो शराबी श्रीखण्ड के स्वाद को दूध का स्वाद मानकर पीता है, उसके जैसा है। आत्मा तो वर्ण, गंध, स्पर्श, रस से रहित है, उसको भोजन के स्वाद का अथवा शरीर के स्पर्शादि का अनुभव नहीं होता है; क्योंकि वे सब तो जड़ हैं और अपने ज्ञानानन्दस्वभाव का तो अज्ञानी को पता ही नहीं है, इसलिए उसको उसका स्वाद भी नहीं आता है। उसको तो शुभाशुभ राग में अपनापना है- इसकारण यह मेरी क्रिया है और मैं इसका करनेवाला हूँ- ऐसे मिथ्यात्व को ही वह वेदता है।

अज्ञानी को अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव का भान नहीं होने से उसकी दृष्टि पुण्य-पाप में लग रही है। पुण्य-पाप के फल में संसार मिलता है वह तो दूर रहा; परन्तु पुण्य-पाप में एकता पड़ी है, वह अधर्म है। आत्मा ज्ञानानन्दमूर्ति भगवान है- ऐसे ज्ञान और आनन्द का अज्ञानी को भान नहीं होने से उसको धर्म नहीं होता है।

देखो ! यह जीव और अजीव का बँटवारा (भेद) चल रहा है। जीव तो ज्ञाता-दृष्टा स्वभावी है। वह कोई शरीर अथवा रागादि क्रिया का कर्त्ता नहीं है। वह तो चैतन्यचक्षु है। जगत दृश्य है और मैं दृष्टा हूँ, जगत ज्ञेय है और मैं ज्ञाता हूँ - ऐसा नहीं मानकर अज्ञानी जगत अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प से लेकर समस्त वस्तुयें मेरी है और मैं उनका कर्त्ता हूँ, मैं दया की क्रिया करता हूँ, दान की क्रिया करता हूँ, तपस्या करता हूँ इसप्रकार शुभ-अशुभ क्रिया और विकल्प का कर्त्ता मैं हूँ- ऐसा मानता है। यह कर्त्ता-कर्म-क्रियाद्वार है न ! अत: अज्ञानी कहाँ भूल करता है यह बताया है। विकार तो राग की क्रिया है, आत्मा की क्रिया नहीं है। आत्मा की क्रिया उससे भिन्न है; परन्तु अज्ञानी इस भेदज्ञान के मर्म को नहीं जानता है।

गजराज और शराबी की तरह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि को वस्तु के स्वरूप का भान नहीं है। उसकी दृष्टि पर्याय पर पड़ी है। पुण्य-पाप की क्रिया मेरी है और मैं उसका कर्त्ता हूँ- ऐसा मानता हुआ वह चैतन्य के स्वाद से शून्य है। वह विभाव के स्वाद में ऐसा लीन है कि उसको स्वभाव के स्वाद का पता ही नहीं है। इसलिए उसको जीवतत्त्व का ही पता नहीं है।

'चेतन अचेतन दुहू कौ मिश्र पिंड लखि'- चेतन तो ज्ञान और आनन्दस्वरूप है और पुण्य-पाप के विकल्प अचेतन हैं, आत्मा का स्वभाव नहीं है। लोगों को यह एकान्त जैसा लगता है; परन्तु एकान्त कहते किसे हैं- यही पता नहीं है। आत्मा एक अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाववाला ही है, पुण्य-पाप उसका स्वभाव नहीं है; तो भी पुण्य-पाप को निज मानकर उनकी क्रिया में लीन रहता है, वह अनेकांत को माननेवाला नहीं, बल्कि मिथ्यादृष्टि

है। पुण्य-पाप के भाव में आनन्द तो नहीं, किन्तु अकेला दु:ख है और वे अचेतन हैं, उनमें ज्ञान नहीं है।

महीनों-महीनों के उपवास करे अथवा मास खमण करे; परन्तु वह कोई आत्मा की क्रिया नहीं है। सौ बार उठ-बैठकर भगवान की खम्मा-खम्मा करे, वह भी जड़ की क्रिया है और साथ में राग की मंदता है, वह पुण्य बंध का कारण है। अज्ञानी उसे ही धर्म की क्रिया मानता है और वह आत्मा व राग के भेदज्ञान के मर्म को नहीं जानता है। जिसप्रकार हाथी चूरमा के स्वाद को नहीं जानता है, जिसप्रकार शराबी मनुष्य श्रीखण्ड के स्वाद को नहीं जानता है; उसीप्रकार अज्ञानी आत्मा के अतीन्द्रिय स्वाद को नहीं जानता है।

अज्ञानी ने कभी भी स्वसन्मुख होकर स्वभाव को नहीं देखा है और उसकी दृष्टि परसन्मुख ही है। इसकारण दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोधादि के विकल्प उत्पन्न होते हैं, उन्हें ही अपना मानता है। 'यह मेरा कर्तव्य है- ऐसा मानकर उनका सेवन करता है। उसको ऐसा लगता है कि श्रावक के भी छह आवश्यक कहे हैं न! भाई! ये छह तो विकल्प हैं। मूल आवश्यक तो राग से भिन्न अपने स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और रमणता करना-यह निश्चय आवश्यक है।

नियमसार में भी कहा है कि पुण्य-पाप से भिन्न अपने शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन की दृष्टि, ज्ञान और रमणता करना, यह निश्चय से कर्तव्य है। आत्मा का ज्ञान होने के पश्चात् छह आवश्यक की क्रियाओं का विकल्प आता है, उसका तो मात्र ज्ञान कराया है। यह भी कहा है कि शुभभाव के वश होता है, वह अनावश्यक है।

अहो! ऐसा कौन मान सकता है। राग, पुण्य-पाप, दया, दान के विकल्प को दु:खरूप कौन मान सकता है?कि जिसको अन्दर में अपने अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हुआ हो, आनन्दस्वरूप चैतन्य का भान हुआ हो, वह अपने आनन्द के साथ इस राग को मिलाता है -तुलना करता है तो ख्याल में आता है कि राग तो आत्मा की जाति नहीं है, राग तो दु:खरूप है -ऐसा उसको भासित होता है। तत्पश्चात् जैसे-जैसे आनन्द की उग्रता होती जाती

है, वैसे-वैसे राग छूटता जाता है। चारित्रदशा में अन्तर की उग्रता बढ़ जाती है और वस्त्र-पात्र रखने का विकल्प भी नहीं आता -ऐसी वस्तु की मर्यादा है। वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपना मनवाना मिथ्या है।

न्याय समझे बिना अनेकांत...अनेकांत करने से अनेकांत सत्य नहीं हो जाता। माता को माता भी कहना और स्त्री (पत्नी) भी कहना -ऐसा अनेकांत नहीं होता है। परन्तु..यह मार्ग ऐसा है कि साधारण प्राणी को समझना कठिन पड़ता है।

चेतन अचेतन दुहूँ कौ मिश्र पिंड लखि।
एकमेक मानै न विवेक कछु कियौ है ।।

भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप है तथा राग अचेतन और दु:खरूप है; परन्तु अज्ञानी को इनकी भिन्नता का लेशमात्र भी भान नहीं है। इसलिए वह पुण्य-पाप भाव को ही अपना स्वरूप मानकर उनका स्वाद लेता है और चैतन्य को तो भूल गया है। इसलिए यहाँ कहा है कि व्रतादि पालता है; परन्तु चैतन्य का तो जिसको विस्मरण हो गया है, वह जड़ है। उसको चेतन और अचेतन की भिन्नता का पता नहीं है।

दिगम्बर, श्वेताम्बर अथवा किसी भी मत के शास्त्र को एक ओर रखकर न्याय से विचार करे तो भी समझ में आ सकने योग्य बात है कि 'जो आत्मा से भिन्न पड़ जाता है, वह आत्मा का कैसे हो सकता है?' राग आत्मा के साथ कायम नहीं रहता, भिन्न पड़ जाता है, इसलिए वह आत्मा नहीं है। वीतरागता आत्मा में से निकल नहीं जाती, राग तो निकल जाता है और राग है, तब भी राग जीव को दु:ख का कारण है; परन्तु उस दु:ख का भान किसको होता है? कि जिसको आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ, वह राग के साथ मिलान करे तो राग दु:खरूप लगता है। अज्ञानी को तो आत्मा का भान नहीं है, अत: वह तो राग और आत्मा को एक ही मानता है।

भावार्थ यह है कि मिथ्यादृष्टि जीव स्व-पर के विवेक के अभाव में पुद्गल के मिलाप से जीव को कर्म का कर्ता मानता है। मिथ्या अर्थात्

झूठी-पाखण्ड दृष्टि वाले जीव-सत्यदृष्टि का खून करनेवाले जीव स्व-पर के विवेक के अभाव में अर्थात् मैं ज्ञानानन्दस्वरूप प्रज्ञाब्रह्म हूँ और रागादि दु:खरूप विकल्प हैं इन दोनों की भिन्नता के विवेक के अभाव में रागादि के मिलाप से जीव को कर्म का कर्ता मानते हैं। अज्ञानी ऐसा मानता है कि राग की क्रिया मेरी है और मैं ही कर्म का भी कर्ता हूँ।

इसप्रकार यह 13वाँ पद हुआ। अब 13वें श्लोक का (14वाँ) पद लेते हैं। उसमें जीव को कर्म का कर्ता मानना मिथ्यात्व है- इसका दृष्टान्त कहते हैं। जिसको ज्ञानस्वरूप आत्मा का तो भान नहीं है और बलात्कारपने रागादि का कर्ता होता है वह मूढ़ है। जो अपना नहीं है, उसे अपना मानने में उलटा जोर(बल) काम करता है।

जीव को कर्म का कर्त्ता मानना मिथ्यात्व है, इसपर दृष्टान्त :-

जैसैं महा धूपकी तपतिमैं तियासौ मृग,
भरमसौं मिथ्याजल पीवनकौं धायौ है।
जैसैं अंधकार मांहि जेवरी निरखि नर,
भरमसौं डरपि सरप मानि आयौ है ।।
अपनैं सुभाव जैसैं सागर सुथिर सदा,
पवन-संजोगसौं उछरि अकुलायौ है।
तैसै जीव जड़सौं अव्यापक सहज रूप,
भरमसौं करमकौ करता कहायौ है ।।14।।

अर्थ:- जिस प्रकार अत्यन्त तेज धूप में प्यास का सताया हुआ हिरण भूल से मृगजल पीने को दौड़ता है, अथवा जैसे कोई मनुष्य अंधेरे में रस्सी को देख उसे सर्प जान भयभीत होकर भागता है, और जिस प्रकार समुद्र अपने स्वभाव से सदैव स्थिर है तथापि हवा के झकोरों से लहराता है; उसी प्रकार जीव स्वभावत: जड़ पदार्थों से भिन्न है, परन्तु मिथ्यात्वी जीव भूल से अपने को कर्म का कर्त्ता मानता है।।14।।

काव्य – 14 पर प्रवचन

जिसको ज्ञानस्वरूप आत्मा का तो भान नहीं है और जबरदस्ती विकल्प का कर्ता होने जाता है, वह मूढ़ है। उसके लिए दृष्टान्त दिया है कि 'जैसे प्यास से पीड़ित हिरण रेतीली जमीन में सूर्य की किरणों के पड़ने से दिखनेवाली चमक को पानी है' ऐसा मानकर पानी पीने दौड़ता है; परन्तु वहाँ पानी नहीं है। उसी प्रकार अज्ञानी अपने स्वभाव से अनजान है, इस कारण भ्रम से कर्म का कर्ता होता है।

जैसे अंधकार में डोरी पड़ी हो, वह सर्प जैसी लगने से भय के कारण मनुष्य भागता है और जिसप्रकार समुद्र अपने स्वभाव से तो स्थिर है, तथापि पवन के साथ उछलता है। उसीप्रकार जीव स्वभाव से तो कर्म का कर्ता नहीं है तो भी अज्ञानी कर्ता होता है। ऐसी अज्ञानी की दशा है। उसमें से उसको स्वाभाविक दशा में जाने में कितना धीरज चाहिए ?

पुण्य-पाप तो आत्मा से भिन्न है, तो भी अज्ञानी उनको ही अपना स्वरूप मानकर पीता है और अपने आनन्द को पीना छोड़ देता है। जो जीव राग को अपना मानकर सेवन करते हैं- ऐसे जीवों के लिए कहते हैं कि जिनको हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि पापभाव की मिठास है, वे जीव मूढ़ हैं। उनको जीव की श्रद्धा नही हैं, उन्हें आत्मा के आनन्द की रुचि नहीं है। जिनको अहिंसा, सत्य, शील आदि शुभराग की रुचि है उन्हें भी आत्मा का आनन्द नहीं आता। भगवान की भक्ति आदि का शुभराग आता है वह अलग बात है; परन्तु उसकी रुचिवाले को आत्मा के आनन्द का पता नहीं है। वह शुभराग में ही लीन होने से अपने स्वरूप को नहीं जानता। शुभराग आता है, उससे इन्कार नहीं है; परन्तु उसमें लीन हो जाता है वह अज्ञानी-मूढ़ है।

कोई ऐसा मानता है कि राग से भी धर्म होता है और आत्मा से भी धर्म होता है- ऐसा अनेकांत है; तो उसकी यह मान्यता झूठी है। धर्म आत्मा से ही होता है और राग से नहीं होता यह अनेकांत है। भाई ! यह तो शान्ति से समझने योग्य बात है। वाद-विवाद करने से यह बात समझ में आवे, ऐसी नहीं है। क्रमशः

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :- आप उपादान पर अधिक जोर देते हैं, जब हम श्रीमद् का पढ़ते हैं तब ऐसा लगता है कि उन्होंने निमित्त पर विशेष भार दिया है।

समाधान :- ऐसा नहीं होता। सबके कहने का आशय एक ही है। सबका यही कहना है कि तू कर तो (कार्य) हो। कोई निमित्त की ओर से भले बात करते हों, परन्तु करना तो अपने को ही है।

कोई व्यवहार की ओर से बात करते हों इसलिए वे व्यवहार का कहते हैं और दूसरे अध्यात्म का कहते हैं ऐसा नहीं कहा जाता। सबका आशय एक ही होता है। सब भावलिंगी मुनि मुक्ति के मार्ग में थे। तथापि कोई व्यवहार के शास्त्रों की रचना करें इसलिए वे कुछ दूसरा कहते हैं ऐसा नहीं है। सबका आशय एक ही होता है।

प्रश्न :- 'आनन्द का दिन' उसमें आपने जो लिखा है कि 'चैतन्य भगवान अपने निर्विकल्प स्वरूप में केलि कर रहे थे-खेल रहे थे' यह वाक्य तो कोई अद्भुत है।

समाधान :- वस्तु पर दृष्टि स्थापित करने पर आत्मा पर्याय में केलि करता प्रगट होता है। अनन्त गुणसागर आत्मा है, वह कोई निराला ही है, अद्भुत है, चमत्कारिक है। स्वानुभूति में विचारना नहीं पड़ता या गोघना (गोखना) नहीं पड़ता। अपने स्वभाव में ही खेलता हुआ वह प्रगट होता है; क्योंकि वह उसका स्वभाव ही है। उसका रम्य-रमता स्वभाव है। विकल्प छूटने पर सहज प्रगट हो ऐसा ही उसका स्वभाव है। अनन्त गुण-पर्याय में रमना, वह आत्मा का सहज स्वभाव है। मूल वस्तु स्वयं अपने रूप रहकर अपने गुण-पर्याय में रमण करती है; वह उसका स्वभाव ही है।

प्रश्न :- दृष्टि और ज्ञान की सन्धि समझाने की कृपा करें। हम तो एक का निर्णय करने जाते हैं, वहाँ दूसरा छूट जाता है।

समाधान :- दृष्टि को मुख्य रखकर ज्ञायक को ग्रहण करना। उसके साथ-साथ ज्ञान भी सबका होता है। उसमें एक का निर्णय करे और दूसरा

छूट जाये, ऐसा नहीं होता। साधना में दृष्टि और ज्ञान साथ होते हैं। दृष्टि को लक्ष्य में रखे तो ज्ञान छूट जाये और ज्ञान को लक्ष्य में रखे तो दृष्टि छूट जाये ऐसा नहीं होता; परन्तु यदि एकान्त ग्रहण करे तो साधना छूट जाती है, नहीं तो वह छूट जाये ऐसा नहीं होता। जो ज्ञायक को ग्रहण करे उसे ज्ञान में ऐसा होता है कि यह पर्याय है। साधना में पर्याय का ज्ञान होता है। साधना में समस्त निर्मल पर्यायें पुरुषार्थपूर्वक आती हैं, छूट नहीं जाती—ऐसी उसकी सन्धि है। एक ज्ञायक को ग्रहण किया और दृष्टि वहाँ स्थापित कर दी तो सब छूट जाये ऐसा नहीं होता। दृष्टि और ज्ञान की सन्धि हो सकती है, एक को मुख्य रखे और दूसरा गौण रखे तो सन्धि हो सकती है। ज्ञायक को मुख्यरूप से ग्रहण करे और पर्याय का लक्ष्य रखकर (ज्ञान करके) पुरुषार्थ करे तो सन्धि होती है। मैं तो अनादि-अनन्त शुद्ध हूँ। भीतर शुद्धता में कहीं अशुद्धता घुसी नहीं है; तथापि पर्याय में अशुद्धता है इसलिए अन्तर में स्वरूप के ओर की परिणति प्रगट करने से अशुद्धता टलती है। एक को ग्रहण करे तो दूसरा छूट जाये ऐसा नहीं है, क्योंकि एक द्रव्य है और एक पर्याय है। यदि दो द्रव्य हों तो एक को ग्रहण करने से दूसरा छूट जाएगा; परन्तु यह तो एक को गौण करना है और एक को मुख्य रखना है। उपयोग में कभी पर्याय के विचार आयें, तो पर्याय ज्ञान में मुख्य हो, परन्तु दृष्टि में तो एक द्रव्य ही मुख्य है और पर्याय गौण है।

प्रश्न :- प्रतिज्ञा लेने के बाद यहाँ कितने वर्ष बीत गये, तथापि भीतर कार्य नहीं हुआ; तो आगे कैसे बढ़ें ?

समाधान :- आत्मा के हेतु से प्रतिज्ञा ली है, यह बात अच्छी है; उसमें अब आगे बढ़ना है। जो जिज्ञासु है उसकी भावना कहीं निष्फल थोड़े ही जायेगी, फलेगी ही। अपने आत्मा के ध्येय से प्रतिज्ञा ली है, उसमें सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ हो, वह अच्छी बात है; नहीं तो गहरे संस्कार पड़ें वह भी लाभ का कारण है। शास्त्र में आता है कि कर सके तो ध्यानमय प्रतिक्रमण करना और नहीं बन सके तो कर्तव्य है कि श्रद्धा करना, श्रद्धा में फेरफार मत करना। श्रद्धा का बल बराबर रखे तो आगे बढ़ा जा सकेगा। ज्ञायक के मार्ग के सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है। क्रियाकाण्ड का कोई मार्ग

नहीं है, मार्ग अन्तर का है। ज्ञायक की श्रद्धा करना, भेदज्ञान करना, द्रव्य पर दृष्टि रखना अर्थात् शरीर और विकल्प से अपना स्वभाव भिन्न है, इस प्रकार ज्ञायक को अलग कर लेना; वह एक ही मार्ग है, अन्य कोई मार्ग नहीं है। सर्व विभावों से स्वयं भिन्न है, विभाव अपना स्वभाव ही नहीं है—इस प्रकार भेदज्ञान की धारा निरन्तर बढ़ाने जैसी है। देव-गुरु ने जो बतलाया वह करना है। देव-गुरु की श्रद्धा तथा आत्मा की श्रद्धा करना।

देव-गुरु का सान्निध्य प्राप्त हुआ सो महाभाग्य की बात है। उनकी महिमा तथा ज्ञायक की महिमा करना। ज्ञायक महिमावन्त है, उसके गहरे संस्कार डालना। परिणति प्रगट हो तो अच्छी बात है, नहीं तो श्रद्धा कर्तव्य है, गुरुदेव के प्रताप से आत्मा का कल्याण करने हेतु (यहाँ) सब इकट्ठे हुए हैं।

इस भव में सब तैयारी कर लेना और पुरुषार्थ करना। गुरुदेव की देशनालब्धि प्राप्त हुई है तो ऐसे गहरे बीज बोना जो शीघ्र फलित हों।

प्रश्न :- ज्ञाताधारा द्रव्य के आश्रय से प्रगट होती है, तो उस 'आश्रय' का भाव क्या है, वह कृपया समझाइये।

समाधान :- आश्रय अर्थात् अपने चैतन्य का अस्तित्व ग्रहण करना। 'यह चैतन्य मैं हूँ, यह विभावादि मैं नहीं हूँ', इस प्रकार अपने अस्तित्व को ग्रहण करके उसमें स्थिर खड़े रहना। विभाव से दृष्टि उठाकर चैतन्यमय ज्ञायक का जो अस्तित्व है वही मैं हूँ, इस प्रकार अपने ज्ञानस्वभाव को ग्रहण करना। इस विभाव के साथ जो ज्ञान है वह विभावमिश्रित ज्ञान मैं नहीं हूँ, परन्तु अकेला जो ज्ञान है, उसे ज्ञानलक्षण द्वारा ग्रहण करना। ज्ञान से भरा हुआ चैतन्य द्रव्य सो ही मैं हूँ, ऐसे अपने अस्तित्व को ग्रहण करके, उसमें दृष्टि स्थापित करना तथा उसी में लीनता करना। इस प्रकार द्रव्य ही उसका आलम्बन है, दूसरा कोई नहीं। भगवान ने और गुरुदेव ने बतलाया है कि जो कोई मोक्ष गये हैं, वे सब यह एक ही उपाय से गये हैं, दूसरा कोई उपाय नहीं है। विभाव की परिणति बाहर जाये तो बारम्बार चैतन्य का अस्तित्व ग्रहण करना कि 'ज्ञायक सो मैं हूँ।'

ज्ञानगुण ऐसा असाधारण है कि वह लक्ष्य में—ख्याल में आता है।

शेष पृष्ठ 27 पर.....

प्रथमानुयोग

....गतांक से आगे

तीर्थधाम चिदायतन

हस्तिनापुर का अतिशयकारी इतिहास

धार्मिक नगरी हस्तिनापुर का वर्णन उत्तरपुराण से

वे विचार करने लगे कि समस्त सम्पदाएँ मेघों की छाया के समान हैं, लक्ष्मी इन्द्रधनुष और बिजली की चमक के समान हैं, शरीर मायामय है, आयु प्रात:काल की छाया के समान है—उत्तरोत्तर घटती रहती है, अपने लोग पर के समान हैं, संयोग वियोग के समान है, वृद्धि हानि के समान है और यह जन्म पूर्व जन्म के समान है। ऐसा विचार करते हुए चक्रवर्ती शान्तिनाथ अपने समस्त दुर्भाव दूर कर घर से बाहर निकलने का उद्योग करने लगे। उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर कहा कि हे देव! जिसकी चिरकाल से सन्तति टूटी हुई है, ऐसे इस धर्मरूप तीर्थ के प्रवर्तन का आपका यह समय है। महाबुद्धिमान् शन्तिनाथ चक्रवर्ती ने लौकान्तिक देवों की वाणी का अनुमोदन कर अपना राज्य बड़े हर्ष से नारायण नामक पुत्र के लिए दे दिया। तदनन्तर देवसमूह के अधिपति इन्द्र ने उनका दीक्षाभिषेक किया। इस प्रकार सज्जनों में अग्रेसर भगवान युक्तिपूर्ण वचनों के द्वारा समस्त भाई-बन्धुओं को छोड़कर देवताओं के द्वारा उठाई हुई सर्वार्थसिद्धि नाम की पालकी में आरूढ़ हुए और सहस्राम्रवन में जाकर सुन्दर शिलातल पर उत्तर की ओर मुख कर पर्यंकासन से विराजमान हो गये। उसी समय ज्येष्ठकृष्ण चतुर्दशी के दिन शाम के वक्त भरणी नक्षत्र में बेला का नियम लेकर उन्होंने अपना उपयोग स्थिर किया, सिद्ध भगवान को नमस्कार किया, वस्त्र आदि समस्त उपकरण छोड़ दिये, पंच मुट्ठियों के द्वारा लम्बे क्लेशों के समान केशों को उखाड़ डाला। अपनी दीप्ति से जातरूप—सुवर्ण की हँसी करते हुए उन्होंने जातरूप—दिगम्बर मुद्रा प्राप्त कर ली, और शीघ्र ही सामायिक चारित्र सम्बन्धी विशुद्धता तथा मन:पर्ययज्ञान प्राप्त कर लिया। इन्द्र ने उनके केशों को उसी समय देदीप्यमान पिटारे में रख लिया। सुगन्धि के कारण उन केशों पर आकर बहुत से भ्रमर बैठ गये थे, जिससे ऐसा जान पड़ता था कि वे कई गुणित हो गये हों। इन्द्र ने उन केशों को

क्षीरसागर की तरंगों के उस ओर क्षेप दिया। चक्रायुध को आदि लेकर एक हजार राजाओं ने भी विपत्ति को अन्त करनेवाले श्री शान्तिनाथ भगवान के साथ संयम धारण किया था। हमारे भी ऐसा ही संयम हो इस प्रकार की इच्छा करते इन्द्रादि भक्त देव, भक्तिरूपी मूल्य के द्वारा पुण्य रूपी सौदा खरीदकर स्वर्गलोक के सन्मुख चले गये।

इधर आहार करने की इच्छा से समस्त लोक के स्वामी श्री शान्तिनाथ मुनिराज मन्दिरपुर नगर में प्रविष्ट हुए। वहाँ सुमित्र राजा ने बड़े उत्सव के साथ उन्हें प्रासुक आहार देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये। इस प्रकार अनुक्रम से तपश्चरण करते हुए उन्होंने समस्त पृथिवी को पवित्र किया और मोहरूपी शत्रु को जीतने की इच्छा से कषायों को कृश किया। चक्रायुध आदि अनेक मुनियों के साथ श्रीमान् भगवान शान्तिनाथ ने सहस्राम्रवन में प्रवेश किया और नन्द्यावर्त वृक्ष के नीचे तेला के उपवास का नियम लेकर वे विराजमान हो गये। अत्यन्त श्रेष्ठ भगवान पौष शुक्ल दशमी के दिन सायंकाल के समय पर्यंकासन से विराजमान थे। पूर्व की ओर मुख था, निर्ग्रन्थता आदि समस्त बाह्य सामग्री उन्हें प्राप्त थी, अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन करणों से प्राप्त हुई क्षपक श्रेणी के मध्य में वे अवस्थित थे, सूक्ष्म-साम्पराय नामक चतुर्थ चारित्ररूपी रथ पर आरूढ़ थे, प्रथम शुक्लध्यानरूपी तलवार के द्वारा उन्होंने मोहरूपी शत्रु को नष्ट कर दिया, अब वे वीतराग होकर यथाख्यातचारित्र के धारक हो गये। अन्तर्मुहूर्त बाद उन्होंने द्वितीय शुक्लध्यानरूपी चक्र के द्वारा घातियाकर्मों को नष्ट कर दिया, इस तरह वे सोलह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था को प्राप्त रहे। मोहनीय कर्म का क्षय होने से वे निर्ग्रन्थ हो गये, ज्ञानावरण, दर्शनावरण का अभाव होने से नीरज हो गये, अन्तराय का क्षय होने से वीतविघ्न हो गये और समस्त संसार के एक बान्धव होकर उन्होंने अत्यन्त शान्त केवलज्ञानरूपी साम्राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किया। उसी समय तीर्थंकर नाम का बड़ा भारी पुण्यकर्मरूपी महावायु, चतुर्णिकाय के देवरूपी समुद्र को क्षुभित करता हुआ बड़े वेग से बढ़ रहा था। अपने आप में उत्पन्न हुई सद्भक्ति रूपी तरंगों से जो पूजन की सामग्री लाये हैं, ऐसे सब लोग रत्नावली आदि के द्वारा, सब जीवों के नाथ श्री शान्तिनाथ भगवान की पूजा करने लगे। **(श्लोक, 464 से 488 तक)** **क्रमशः**

करणानुयोग

नरकों के प्रमाण

16. नरकों के प्रमाण

रत्नप्रभा – एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है।

शर्कराप्रभा – बत्तीस हजार योजन मोटी है।

बालुकाप्रभा – अट्ठाईस हजार योजन मोटी है।

पंकप्रभा – चौबीस हजार योजन मोटी है।

धूमप्रभा – बीस हजार योजन मोटी है।

तम:प्रभा – सोलह हजार योजन मोटी है।

महातम:प्रभा – आठ हजार योजन मोटी है।

17. नरकों का विस्तार :

प्रथम नरक का इन्द्रक पैंतालीस लाख योजन के विस्तार में है। प्रथम स्वर्ग का ऋजु विमान, सिद्धशिला, सिद्धक्षेत्र और मनुष्य लोक – ये सब समान हैं व एक-दूसरे के ऊपर हैं।

सातवें नरक का इन्द्रक बिल एक लाख योजन के विस्तार का है। सातवें नरक का इन्द्रक बिल, जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्धि और सुमेरु—ये चारों समान विस्तार के हैं। सब इन्द्रक बिल संख्यात योजन के और श्रेणीबद्ध बिल असंख्यात योजन के हैं और प्रकीर्णक बिलों में से कुछ संख्यात योजन के हैं और कुछ असंख्यात योजन के हैं।

18. नरकों में सम्यक्त्व के कारण :

पहले से तीसरे नरक तक धर्मश्रवण, जातिस्मरण और वेदना—तीन निमित्त कारण सम्यक्त्व उत्पत्ति के हैं।

चौथे नरक से सातवें नरक तक जातिस्मरण और वेदना ये दो निमित्त कारण सम्यक्त्व उत्पत्ति के हैं। नरक के जीवों को उपशम और क्षयोपशम ये दो सम्यक्त्व होते हैं। क्षायिक उत्पन्न नहीं होता।

19. स्वर्ग के नाम :

1. सौधर्म, 2. ऐशान, 3. सानत्कुमार, 4. माहेन्द्र, 5. ब्रम्ह, 6. ब्रम्होत्तर, 7. लानत्व, 8. कापिष्ठ, 9. शुक्र, 10. महाशुक्र, 11. शतार, 12. सहस्त्रार, 13. आनत, 14. प्राणत, 15. आरण, 16. अच्युत।

20. स्वर्गों में इन्द्रों का वर्णन :

सोलह स्वर्गों में बारह इन्द्र होते हैं।

प्रथम स्वर्ग से चौथे स्वर्ग तक एक-एक इन्द्र होता है।

पाँचवें-छठे, सातवें-आठवें, नौवें-दसवें और गयारहवें-बारहवें स्वर्गों में से दो-दो के मध्य एक-एक इन्द्र होता है।

तेरहवें स्वर्ग से लेकर सोलहवें स्वर्ग तक प्रत्येक में एक-एक इन्द्र होता है।

इस प्रकार सोलह स्वर्गों में बारह इन्द्र होते हैं। इन बारह इन्द्रों में छह तो दक्षिणेन्द्र होते हैं एवं छह उत्तरेन्द्र होते हैं।

सौधर्म इन्द्र, सानत्कुमार, ब्रम्ह, लान्तव, आनत, आरण ये छह दक्षिणेन्द्र हैं और शेष छह उत्तरेन्द्र हैं। बारह इन्द्र और बारह ही प्रतीन्द्र होते हैं—इस प्रकार स्वर्गों में कुल चौबीस इन्द्र हैं। इनसे ऊपर के देव कल्पातीत कहलाते हैं।

देवगति में एक-एक देव की कम से कम बत्तीस देवियाँ होती है।

21. नंदीश्वर द्वीप :

यह मध्यलोक का अष्टम द्वीप है। इस द्वीप में 16वापियाँ, 4 अंजनगिरि, 16दधिमुख और 32 रतिकर नाम के कुल 52 पर्वत हैं। प्रत्येक पर्वत पर एक-एक चैत्यालय हैं। प्रत्येक अष्टान्हिका पर्व में अर्थात् कार्तिक, फाल्गुन व आषाढ़ मास के अन्तिम आठ-आठ दिनों में देवगण उस द्वीप में जाकर तथा मनुष्यजन अपने मन्दिरों व चैत्यालयों में उस द्वीप की स्थापना करके, खूब भक्ति भाव से इन 52 चैत्यालयों की पूजा करते हैं।

नन्दीश्वर द्वीप में एक-एक चैत्यालय में एक सौ आठ प्रतिमायें और एक-एक प्रतिमा पाँच सौ धनुष की रत्नमयी है।

22. जम्बूद्वीप की परिधि :

तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन (316227), तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष तेरह अँगुल से कुछ अधिक है। जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। जम्बूद्वीप के मध्य में एक लाख योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत है, उसमें से 1000 योजन नीचे जमीन में और 99,000 योजन जमीन के ऊपर है। इसकी 40 योजन की चूलिका है, जो मूल में 12 योजन, बीच में 8योजन और ऊपर 4 योजन चौड़ी है।

23. जम्बूद्वीप नाम की सार्थकता :

उत्तरकुरु भोगभूमि में अनादिनिधन पृथिवीकाय रूप अकृत्रिम परिवार सहित जम्बू वृक्ष है, जिसके कारण यह जम्बूद्वीप कहलाता है।

24. जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र हैं :

1. भरत, 2. ऐरावत, 3. विदेह—ये तीन तो कर्म भूमियाँ हैं।

1. हरि, 2. रम्यक, 3. हैरण्यवत, 4. हेमवत—ये चार भोग भूमियाँ हैं।

25. जम्बूद्वीप से आगे के द्वीपों एवं समुद्रों का वर्णन—

द्वीपों के नाम : 1. जम्बूद्वीप, 2. धातकीखण्ड, 3. पुष्करवर, 4. वारुणीवर, 5. क्षीरवर, 6. घृतवर, 7. क्षोद्रवर, 8. नन्दीश्वर, 9. अरुणवर, 10. अरुणाभास, 11. कुण्डलवर, 12. शंखवर, 13. रुचकवर, 14. भुजंगवर, 15. कुशवर, 16. क्रौंचवर।

इस प्रकार ये प्रारम्भ के द्वीप से सोलह द्वीपों के नाम हैं। आगे असंख्यात द्वीप बड़े विशाल हैं।

उसी प्रकार प्रारम्भ के समुद्र से लेकर सोलह समुद्रों के नाम इस प्रकार हैं—

समुद्रों के नाम :

1. लवण समुद्र, 2. कालोदधि समुद्र, 3. पुष्करवर समुद्र, 4. वारुणीवर, 5. क्षीरसागर, 6. घृतवर, 7. क्षोद्रवर, 8. नन्दीश्वर, 9. अरुणवर, 10. अरुणा -भासवर, 11. कुण्डलवर, 12. शंखवर, 13. रुचकवर, 14. भुजंगवर, 15. कुशवर, 16. क्रौंचवर।

क्रमशः

कविवर बुधजन

जयपुर निवासी कविवर बुधजन का पूरा नाम 'बिरधीचंद' था। ये बज गोत्रीय खण्डेलवाल जाति के थे। इनका साहित्यिक जीवन संवत् 1854 से 1895 तक रहा। इनके द्वारा रचित 'छहढाला' बहुत सुन्दर कृति है। अब तक आपकी 17 रचनाएँ प्राप्त हुई है। तत्वार्थबोध संवत् 1871, बुधजन सतसई संवत् 1881, सुबोध पंचास्तिकाय संवत् 1891, बुधजन विलास संवत् 1892, संबोध पंचासिका संवत् 1892, एवं योगसार संवत् 1895 आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं।

बुधजन विलास इनकी सर्वाधिक चर्चित कृति है, इसमें निम्न चार प्रकरण हैं:—

1. देवानुराग शतक, 2. सुभाषित–नीति, 3. उपदेशाधिकार, 4. विराग भावना

मेरे अवगुन जिन गहौ, मैं औगुन को धाम।
पतित उद्धारक आप हो, करो पतित को काम॥

उपर्युक्त पंक्तियाँ देवानुराग शतक प्रकरण के अन्तर्गत लिखी गई है। इन भक्तियों में भक्ति की महत्ता और भक्त की भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

सुभाषित नीति के प्रकरण में भी बुधजनजी ने लगभग 200 दोहे लिखे हैं जो कि एक से एक सुन्दर हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है जो इनके अद्‌भुत ज्ञान और सांसारिक अनुभवों को दर्शाता है।

पर उपदेश करन निपुन ते तो लखे अनेक।
करै समिक बोले समिक, तै हजार में एक॥

उपदेशाधिकार का यह पद भी दृष्टिव्य है :—

दुर्जन सज्जन होत नहिं, राखो जो रथवास।
मेल्यो संग कपूर में, हींग न होत सुवास॥

इसी प्रकार : 'बुधजन–विलास' में कवि की फुटकर रचनाएँ एवं पद संग्रहीत हैं। अब तक आपके लगभग 265 पद प्राप्त हो चुके हैं, जो अद्वितीय हैं।

कवि ने अपनी रचनाएँ साधारण बोलचाल की भाषा में की है। कहीं–कहीं ब्रजभाषा का पुट भी दिखाई देता है। कविताओं में मारवाड़ीपन का भी समावेश है। बुधजन जी की कविताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि वे उच्चकोटि के कवि थे।

करणानुयोग

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

आचार्य ब्रह्मदेव सूरि कहते हैं —

वृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरभरतादिद्वादशचक्रवर्ति विजयादिनव-बलदेव त्रिपृष्ठादिनववासुदेव सुग्रीवादिनवप्रतिवासुदेवसम्बन्धित्रिषष्टि-पुरुषपुराणभेदभिन्नः प्रथमानुयोगो भण्यते।

अर्थात् श्री ऋषभनाथ आदि चौबीस तीर्थंकर, भरतादि बारह चक्रवर्ती, विजय आदि नव बलदेव, त्रिपृष्ठ आदि नव नारायण और सुग्रीव आदि नव प्रतिनारायण सम्बन्धी त्रेसठ शलाका पुरुषों के पुराण, भेद से भेद वाला प्रथमानुयोग कहलाता है। *(वृहद् द्रव्य संग्रह, टीका, पृष्ठ 208)*

प्रथम उपदेश को प्रथमानुयोग कहा जाता है अथवा कथानुयोग भी कहा जाता है। प्रथम शब्द का अर्थ प्रथम श्रेणी नहीं समझकर प्रथम कक्षा समझना चाहिए। जिस प्रकार प्रथम कक्षा में पढ़ने वाला शिशु अबोध होता है, उसको कथा-कहानियों, चित्रों आदि के द्वारा अक्षर बोध कराया जाता है। उसी प्रकार जिसको आगम का ज्ञान नहीं होता, उसको आगम और अध्यात्म का ज्ञान कथानुयोग के द्वारा कराया जाता है।

इस प्रकार जिस उपदेशाधिकार में कथा-कहानियों के माध्यम से आगम का, अध्यात्म का तथा जैन सिद्धान्त का परिज्ञान कराया जाए, वह प्रथमानुयोग है।

आचार्य समन्तभद्र कहते हैं —

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः॥

अर्थात् ऐसा समीचीन बोध देने वाला प्रथमानुयोग है, जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चारों पुरुषार्थों का आख्यान है। त्रेसठ शलाका पुरुषों के चरित्र का वर्णन है, पुण्य योग्य समस्त सामग्री का कथन है, बोधि अर्थात् रत्नत्रय और समाधि अर्थात् चार आराधनाओं का जिसमें विवेचन

है, वह प्रथमानुयोग है। प्रथम शब्द का अर्थ पूर्व पुरुष है। उसका जो कथन करता है, वह प्रथमानुयोग कहा जाता है अर्थात् जिस अनुयोग में पुण्य या पाप को करने वाले प्रसिद्ध पुरुषों को आख्यान रहता है, वह प्रथमानुयोग कहलाता है। **(रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक 43)**

पण्डित आशाधरजी कहते हैं —

पुराणं चरितं चार्थाख्यानं बोधिसमाधिदम्।
तत्त्वप्रथार्थी प्रथमानुयोगं प्रथयेत्तराम्॥

अर्थात् हेय और उपादेय रूप तत्त्व के प्रकाश का इच्छुक भव्य जीव बोधि और समाधि को देने वाले तथा परमार्थ सत् वस्तुस्वरूप का कथन करने वाले पुराण और चरितरूप प्रथमानुयोग को अन्य तीन अनुयोगों से भी अधिक प्रकाश में लावें अर्थात् उनका विशेष अभ्यास करें।

(अनगार धर्मामृत, श्लोक 9, अध्याय-3, पृष्ठ-208)

हरिवंशपुराण, महापुराण, पद्मपुराण, वर्धमान चरित्र आदि ग्रंथ प्रथमानुयोग के उदाहरण हैं।

प्रथमानुयोग का प्रयोजन

पण्डित प्रवर टोडरमलजी कहते हैं—प्रथमानुयोग में तो संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल, महन्त पुरुषों की प्रवृत्ति इत्यादि निरूपण से जीवों को धर्म में लगाया जाता है। जो जीव तुच्छ बुद्धि हों, वे भी उससे धर्म सन्मुख होते हैं, क्योंकि वे जीव सूक्ष्म निरूपण को नहीं पहचानते, लौकिक कथाओं को जानते हैं, वहाँ उनका उपयोग लगता है तथा प्रथमानुयोग में लौकिक प्रवृत्ति रूप ही निरूपण होने से उसे वे भलीभाँति समझ जाते हैं तथा लोक में तो राजादिक की कथाओं में पाप का पोषण होता है। यहाँ महन्त पुरुष राजादिक की कथाएँ तो हैं, परन्तु प्रयोजन जहाँ-तहाँ पाप को छुड़ाकर धर्म में लगाने का प्रकट करते हैं। इसलिए वे जीव कथाओं के लालच से तो उन्हें पढ़ते-सुनते हैं और फिर पाप को बुरा, धर्म को भला, जानकर धर्म में रुचिवन्त होते हैं।

इस प्रकार तुच्छ बुद्धियों को समझाने के लिए यह अनुयोग है। 'प्रथम' अर्थात् 'अव्युत्पन्न' मिथ्यादृष्टि उनके अर्थ जो अनुयोग, सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोम्मटसार की टीका में किया है।

प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकारः प्रथमानुयोगः। **(गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा-361-362)**

तथा जिन जीवों के तत्त्वज्ञान हुआ हो, पश्चात् इस प्रथमानुयोग को पढ़ें-सुनें तो उन्हें यह उसके उदाहरणरूप भासित होता है। जैसे-जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक संयोगी पदार्थ हैं, ऐसा यह जानता था तथा पुराणों में जीवों के भवान्तर निरूपित किए हैं, वे उस जानने के उदाहरण हुए। तथा शुभ-अशुभ शुद्धोपयोग को जानता था व उसके फल को जानता था। पुराणों में उन उपयोगों की प्रवृत्ति और उनका फल जीव के हुआ, सो निरूपित किया है, वही उस जानने का उदाहरण हुआ। इसी प्रकार अन्य जानना। **क्रमशः**

....पृष्ठ 18 पर शेष

अन्य अनेक गुण भी असाधारण हैं, परन्तु वे ख्याल में नहीं आते; इसलिए ज्ञान लक्षण मुख्य है। दूसरे पदार्थों में जानने का लक्षण नहीं है, जानने का लक्षण एक आत्मा में है; इसलिए जानने के लक्षण पर से अपना अस्तित्व ग्रहण करना कि यह जानने का लक्षण है, उस लक्षण वाला मैं चैतन्य हूँ। उस ज्ञान के साथ जीव में अनन्त गुण भी हैं, इसलिए ज्ञानगुण से सम्पूर्ण आत्मा को ग्रहण करना। आनन्द गुण, सुखगुण भी उसमें हैं, परन्तु वह आनन्द ऐसा विशेष गुण नहीं है कि जिससे द्रव्य पकड़ में आये। ज्ञान ही ऐसा विशेष असाधारण स्वभाव है कि उससे आत्मा का ग्रहण हो सकता है। यह बाहर का जाना, इस ज्ञेय को जाना, इसे जाना सो ज्ञान—ऐसा नहीं, परन्तु वह ज्ञान कहाँ से आता है ? उस ज्ञान को धारण करनेवाला कौन है ? ज्ञान का अस्तित्व किस द्रव्य में विद्यमान है ?—ऐसे उस द्रव्य को ग्रहण करना। ज्ञेयाश्रित ज्ञान मैं नहीं, परन्तु मैं स्वयं ज्ञानस्वरूप हूँ; ज्ञान को धारण करनेवाला चैतन्य हूँ—इस प्रकार उसे ग्रहण करना। **क्रमशः**

बालवाटिका

माँ की ममता का मूल्य

इस भौतिक संसार में माँ ही एक ऐसी हस्ती है; जो पिता, भाई और बहन का प्यार दे सकती है। धूप बनकर ठंड मिटा सकती है और ठंडक बनकर गर्मी से बचाती है। इस प्रकार मनुष्य माँ के असीम प्यार के प्रवाह में बहकर जीवन के दुस्सह अभाव को भूल जाता है; क्योंकि माँ का प्यार निष्कपट, निश्छल और त्यागमयी होता है। इसलिए मनुष्य माँ के उपकारों का बदला चाँदी के चंद टुकड़ों से नहीं चुका सकता, राज्य वैभव देकर भी नहीं और झूठी सहानुभुति देकर भी नहीं चुका सकता है। उसके उपकारों को चुकाने के लिए त्याग और बलिदान की जरूरत पड़ती है।

चाणक्य अपनी माँ का इकलौता बेटा था। जब उसने अपनी युवावस्था में प्रवेश किया तो एक दिन उसकी माँ उसका मुँह देखकर रोने लगी। जब चाणक्य ने रोने का कारण पूछा तो वह बोली–बेटा! तुम्हारा भाग्य बड़ा प्रबल है, इसलिए तुम्हारे भाग्य में राजछत्र धारण करना लिखा है; क्योंकि तुम थोड़ा प्रयत्न करके किसी बड़े राज्य के स्वामी बन जाओगे। इसी बात को लेकर मैं रो रही हूँ।

चाणक्य ने पूछा– इसमें रोने की क्या बात है? यह बात तो तुम्हारे लिए खुशी की होनी चाहिए; क्योंकि प्रत्येक माँ अपने बेटे के लिए क्या–क्या नहीं सोचती। इसलिए सच–सच बताओ माँ! तुम क्यों रो रही हो? माँ ने कहा– बेटा! मैं अपने दुर्भाग्य पर रो रही हूँ; क्योंकि अधिकार पाकर मनुष्य अपने सगे–सम्बन्धियों की भी उपेक्षा करने लगता है। इसलिए तुम भी मुझे भूल जाओगे।

कहा भी है–राजा जोगी काके मीत। उस समय तुम मेरी ममता को ठुकरा दोगे। मुझे बिलकुल भी नहीं पूछोगे। मेरा प्यारा लाल मेरे हाथों से अलग हो जायेगा। इसी को सोचकर रोती हूँ।

चाणक्य ने पूछा–माँ! तुम कैसे जानती हो कि मेरे भाग्य में राजा होना लिखा है? माता बोली–बेटा! तुम्हारे सामने के दोनों दाँतों से ज्ञात होता है कि तुम राज–वैभव का भोग करोगे; क्योंकि सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार ऐसे दाँतों वाला व्यक्ति राज–वैभवशाली होता है।

चाणक्य ने उसी समय एक पत्थर उठाकर अपने दाँतों को तोड़ डाला और फेंककर माँ से बोला माँ! तुम अब निश्चिंत हो जाओ। अब मैं राजा नहीं बन सकता, इसलिए सदा तुम्हारे पास ही रहूँगा। बेटे को ऐसा विलक्षण कार्य देखकर माँ चकित हो गई और अपने आँचल से उसका रक्त पोंछती हुई बोली –चाणक्य! यह तूने क्या किया? चाणक्य ने सहज स्वभाव से उत्तर दिया–माँ! तुम्हारी ममता के आगे संसार की बड़ी से बड़ी वस्तु को तुच्छ समझता हूँ। मेरी दृष्टि में वह इन दाँतों से और राज्य से भी कहीं अधिक मूल्यवान है। माता ने प्रेम से गद्‌गद होकर चाणक्य को गले से लगा लिया।

शिक्षा– माता–पिता का कर्ज कभी चुकाया नहीं जा सकता है।

"जिस प्रकार–उसी प्रकार" में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– पहले किताब पढ़ी जाती है, फिर ऑपरेशन किया जाता है, पुस्तकें पढ़ते–पढ़ते कोई ऑपरेशन नहीं करता है।

उसी प्रकार– पहले शास्त्र पढ़े जाते है फिर सम्यक्त्व प्राप्त करने को अभ्यास किया जाता है, अर्थात् आत्म अनुभव होता हैं। शास्त्र पढ़ते–पढ़ते आत्म अनुभव नहीं होता है। उपयोग एक समय में एक ही जगह लगता है।

जिस प्रकार– अफीम का सेवन करने वाला यह मानता है कि मैं अफीम के बिना नहीं रह सकता, जबकि यह बात सत्य नहीं है। अफीम छोड़ने से तो उसका भला ही होगा।

उसी प्रकार– मोही प्राणी यह मानता है कि मोह राग आदि बिना मैं नहीं रह सकता, यह मान्यता सत्य नहीं है क्योंकि अरिहंत भगवान मोह राग छोड़ने से ही अनन्त सुखी होकर रह रहे है।

जिस प्रकार– जहाँ अपना आरक्षण न हो वहां से जबरन उठा ही दिया जाता है। लोक में भी अपनी सीट पर बैठना उचित है।

उसी प्रकार– परमार्थ में भी अपना ध्रुव स्वभाव ही अपना आरक्षित स्थान है। अतः वहीं रहना योग्य है।

जिस प्रकार– प्रवेश निषेध का बोर्ड घरवालों के लिए नहीं होता, बाहर वालों के लिए होता है।

उसी प्रकार– ज्ञानमात्र आत्मा कहने से आत्मा में परद्रव्यों एवं परभावों का निषेध होता है, आत्मा में रहने वाले अनन्त गुणों का नहीं क्योंकि वे तो आत्मा के साथ तादात्मय रूप है।

जिस प्रकार– रूई की गांठ को धुनिया धुन कर उसका रेशा–रेशा अलग कर देता है, तभी वह रूई उपयोग में आती हैं।

उसी प्रकार– आचार्यों की गाथाओं को बाद के आचार्यों एवं ज्ञानियों ने गाथाओं का मर्म खोलकर व्याख्या करके हमारे लिए परमोपयोगी बना दिया है।

जिस प्रकार– तालाब में काई के भीतर निर्मल जल भरा है, लोटा जोर–जोर से डालते है तो काई स्वयं हट जाती है।

उसी प्रकार– रागादिक विकार तो मात्र उपर–उपर हैं अन्तर में निर्मल ज्ञानानन्द लहरा रहा है। अतः दुःखी होने की कोई बात नहीं है।

जिस प्रकार– कोई यह सोचता रहे कि पहले कोई हटे लोटा भरूँ तो प्यासा ही मरेगा।

उसी प्रकार– कोई सोचे पहले कर्म हटें तो शुद्धात्मानुभाव करूँ–ऐसा सोचने वाला संसार में ही भटकेगा।

क्रमशः **संकलन – स्व० प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की**

समाचार-दर्शन

सोनगढ़ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न

सोनगढ़ : स्वर्णपुरी सोनगढ़ के सन्त आध्यात्मिक सत्पुरुष गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के तत्व प्रभावना योग में स्वर्णपुरी सोनगढ़ सौराष्ट्र में स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ व कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट द्वारा जंबूद्वीप मन्दिर व बाहुबली मन्दिर का भव्य निर्माण कराया गया। जिसका भव्य महोत्सव 19 जनवरी से 25 जनवरी 2024 तक 1008 श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का अन्तर्राष्ट्रीय भव्य आयोजन हजारों लोगों की उपस्थिति में किया गया है।

पंचकल्याणक के प्रथम दिवस 19 जनवरी को ज्ञायक का संकल्प धर्मध्वजारोहण एवं इन्द्र प्रतिष्ठा, द्वितीय दिवस 20 जनवरी को ज्ञायक की नि:शंकता गर्भ कल्याणक की पूर्व क्रिया, तृतीय दिवस 21 जनवरी को ज्ञायक का अवधारण गर्भ कल्याणक महोत्सव, चतुर्थ दिवस 22 जनवरी को ज्ञायकता आविर्भाव जन्म कल्याणक महोत्सव, पंचम दिवस 23 जनवरी को ज्ञायकता की अभिवृद्धि तप कल्याणक महोत्सव, षष्टम दिवस 24 जनवरी को ज्ञायकता की पूर्णता ज्ञान कल्याणक महोत्सव, सप्तम दिवस 25 जनवरी को ज्ञायकता की अनंतता मोक्ष कल्याणक महोत्सव मनाया जावेगा एवं 26 जनवरी को बाहुबली भगवान का महामस्तकाभिषेक कर मंगल महोत्सव की पूर्णता की गयी।

ज्ञात हो कि इस महामहोत्सव में सौधर्म इन्द्र बनने का सौभाग्य श्री हितेनभाई सेठ मुम्बई, कुबेर श्री अक्षयभाई दोशी मुम्बई को प्राप्त हुआ। सम्पूर्ण प्रतिष्ठा बाल ब्रह्मचारी सुभाष सेठ, बांकानेर; बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी के प्रतिष्ठाचार्यत्व में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्री के भवतापहारी सी.डी. प्रवचनों के अलावा पण्डित रजनीभाई दोशी, हिम्मतनगर; पण्डित देवेन्द्र जैन, बिजौलियां; पण्डित शैलेशभाई, तलोद; पण्डित अश्विनभाई, मलाड़; पण्डित राजेन्द्रकुमार जैन, जबलपुर; आदि विद्वानों के द्वारा उपस्थित जनसमूह को अपनी वाणी से तत्त्वसुधा रसपान कराया। सम्पूर्ण मंच संचालन पण्डित संजय जैन, जेवर कोटा; श्री राजेशभाई; श्री निमेषभाई शाह, मुम्बई के सान्निध्य से सम्पन्न हुआ।

इस पंचकल्याणक महामहोत्सव में देश-विदेश के हजारों मुमुक्षु भाई-बहनों के साथ-साथ भारत सरकार के गृहमंत्री श्री अमित शाह; केन्द्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री श्री पीयूष गोयल; गुजरात के मुख्यमंत्री श्री भूपेन्द्रभाई पटेल; गुजरात के गृहमंत्री श्री हर्ष संघवी ने भी कार्यक्रम में पधारकर विराजित होनेवाले जिनबिम्बों के दर्शन किये और उपस्थित जनसमूह को सम्बोधा। अन्तिम दिन भगवान बाहुबली का महामस्तकाभिषेक बड़ी भव्यता के साथ किया गया।

तीर्थधाम मङ्गलायतन अलीगढ़ से श्री स्वप्निल जैन, पण्डित अशोक लुहाड़िया, श्री अनिल जैन, श्री सुनील जैन बुलन्दशहर और उपस्थित कार्यकर्ताओं के साथ मंच से तीर्थधाम चिदायतन के आगामी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव का भावभीना आमन्त्रण दिया गया।

अभिनन्दन समारोह

गणतन्त्र दिवस के अवसर पर जैनदर्शन के दो विद्वानों को राष्ट्रीय सम्मान पुरस्कार प्राप्त होना, यह अत्यन्त गौरव की बात है। प्रथम प्राकृत व अपभ्रंश के वयोवृद्ध विद्वान **प्रो. राजाराम आरा (बिहार)** को भारत सरकार द्वारा **पद्मश्री** पुरस्कार-2024 के लिए नामित किया गया। आप जैनदर्शन, पाण्डुलिपि अनुसंधान एवं प्रकाशन क्षेत्र में आपका योगदान अनूठा है और आप दिगम्बर जैन समाज के कुलभूषण हैं।

इसी क्रम में युवा विद्वान **डॉ. मनीष जैन, मेरठ** को भी उत्तरप्रदेश जैन विद्या शोध संस्थान लखनऊ द्वारा **जैन श्रुतसंवर्धन सम्मान** महामहिम राज्यपाल आनन्दीबेन पटेल द्वारा प्रदत्त किया गया। इस अवसर पर मुख्यमन्त्री योगी आदिनाथ भी उपस्थित थे।

वास्तव में यह माँ जिनवाणी का सम्मान है और जैनधर्म दर्शन के लिए गौरव की बात है।

त्रिदिवसीय शिविर सम्पन्न

बैंगलोर : दिनांक 26-28 जनवरी 2024 को बैंगलोर के वासवानी ब्रेंटवुड में तीन दिन का शिविर आयोजित किया गया। जिसमें पण्डित अभयकुमारजी द्वारा उभयाभासी मिथ्यादृष्टि प्रकरण पर स्वाध्याय एवं सर्वज्ञदेव विधान का आयोजन हुआ। जिसमें मंगलार्थी शालीन शहडोल, ऋषभ ग्वालियर, अनितेश करेली, अतिशय कोटा, मयंक भिंड इत्यादि का सहयोग प्राप्त हुआ।

'अमितगति श्रावकाचार'

आचार्य अमितगति द्वारा रचित चरणानुयोग पद्धति का ग्रन्थ 'अमितगति श्रावकाचार' का नवीन प्रकाशन किया गया है। जिसका हिन्दी अनुवाद ब्र. कल्पना बहिन द्वारा किया गया है। सभी साधर्मियों को अध्ययन की प्रेरणा जागृत हो, इस उपलक्ष्य में सभी स्वाध्याय भवनों, मुमुक्षु संस्थाओं एवं प्रवचनकार विद्वानों को नि:शुल्क सप्रेम भेंट स्वरूप प्रदान किया जा रहा है। डाक खर्च आपका स्वयं का होगा।

सम्पर्क : पण्डित सुधीर शास्त्री 9756633800; अभिषेक जैन 9997996346

पण्डित ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी 'आत्मन', अमायन का वियोग, जैन अध्यात्म जगत की अपूरणीय क्षति

अमायन : सम्पूर्ण जैन समाज के लिए यह एक अत्यन्त वैराग्य का प्रसंग है कि अमायन, भिण्ड (म.प्र.) से अध्यात्म की गंगा बहाने वाले अत्यन्त निस्पृही, संयमशील, बहु श्रुत स्वाध्यायशील, प्रवचन दिवाकर आदरणीय बड़े पण्डित जी साहब का वियोग हो गया है। पण्डित ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी 'आत्मन', अमायन का वियोग जैन अध्यात्म जगत की अपूरणीय क्षति है।

अपनी चर्या और तत्त्वचर्चा से जिनवाणी माता को जीवन्त करनेवाले भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज के आप गहरे विद्वान थे। जिसे आपने अपने जीवन में भी बखूबी उतारा था। आपसे प्रेरित होकर अनेक युवा अध्यात्म मार्ग में लगे, अनेकों ने व्रत अंगीकार किये। आपके द्वारा रचित अनेक आध्यात्मिक काव्य आज सभी के कण्ठों का हार बना हुआ है। आपकी आध्यात्मिक चेतना सिर्फ आप तक सीमित नहीं थी बल्कि आपके प्रवचनों और लेखनी के माध्यम से वह अनेकानेक भव्य जीवों का उद्धार करती थी। 'अध्यात्म के साथ आचरण'—ये आपके जीवन का मूलमन्त्र था, इसे ही आपने अपने प्रवचनों में बताया और लेखनी में लिपिबद्ध किया था। मनुष्य लोक में लोग धर्म के लिए दूसरों को मारने के लिए तैयार हैं, धर्म के लिए स्वयं मरने के लिए तैयार हैं (लेकिन धर्म पथ पर चलने को तैयार नहीं हैं) धर्म पथ पर चलने वाले दुर्लभ हैं।

उनका जीवन और प्रवचन दोनों ही हम सभी के लिए मुक्तिपथ का प्रदर्शक है और हम उस मुक्तिमार्ग पर आगे बढ़ें ऐसी भावना भाते हैं।

आपके वैराग्य प्रसंग पर तीर्थधाम मङ्गलायतन में वैराग्य सभा का आयोजन किया गया। जिसमें मङ्गलार्थी छात्र और तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवारीजन उपस्थित थे। इसी निमित्त से देश भर में आपके प्रतिकृतज्ञता ज्ञापित और आपके उपकारों को स्मरण करते हुए जगह-जगह पर श्रद्धांजली सभाओं का आयोजन किया गया।

वैराग्य समाचार

अलीगढ़ : श्री अखिलेश जैन का देह परिवर्तन हो गया है। आप लंबे समय से अस्वस्थ चल रहे थे। आप मङ्गलायतन में एकाउण्टेंट के पद पर कार्य करते थे।

बड़ामलहरा : श्री कन्हैयालाल जैन का देह परिवर्तन शान्तपरिणामपूर्वक हो गया है। आप पण्डित संजय शास्त्री बड़ामलहरा के पिताश्री थे।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार दिवंगत आत्माओं के सुगतिगमन, बोधिलाभ एवं शीघ्र मुक्ति प्राप्ति की भावना भाता है।

बाल ब्रह्मचारी रवीन्द्रजी 'आत्मन्'

पिता का नाम : श्री उग्रसेनजी जैन

माता का नाम : श्रीमती गुणमाला जैन

शिक्षा : एम.ए. (हिन्दी), साहित्यरत्न

जन्म स्थान : कुरावली, मैनपुरी (उ.प्र.)

जन्मतिथि : 23 जनवरी 1952, दिन-बुधवार
माघ कृष्णा एकादशी, सम्वत् 2008

साधनास्थली : अमायन (भिण्ड, म.प्र.)

कथन शैली : त्याग, संयम, ज्ञान-वैराग्यमयी, सहज, सारगर्भित, स्याद्वाद, अनेकान्तमयी।

जीवन शैली : आराधना युक्त जीवन ही प्रभावना, एक रूपता, आडम्बर-शून्य, स्वान्तःसुखाय, निरपेक्ष, आगमोक्त, निर्दोष परम्परा।

साहित्य लेखन : आपकी कलम ने लिखने के लिए कुछ नहीं लिखा, आपका साहित्य 'स्वान्तःसुखाय' रहा है। पद्य की मुख्यता है, परन्तु उसमें भक्ति का प्रवाह है, न कि साहित्य की कठिन शब्दावली, फिर भी वह काव्य साहित्य का अनूठा परिचय दे रहा है।

गद्य के रूप में जीवन को आलोकित करने वाली विभिन्न निर्देशिकायें जो साधक एवं सामान्य जन को दिशा देने में निमित्त बनी हैं। लघु कथाएँ संक्षिप्त होने पर भी हमारी संस्कृति की रक्षक एवं आदर्श जीवन की प्रेरणारूप हैं। जो भी लिखा वह साहित्य बन गया, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण समय-समय पर लिखे पत्र जो 'स्वानुभव पत्रावलि' के रूप में हैं।

सांगोपांग, संक्षिप्त कथन शैली का ग्रन्थ लिखने की भावना आपकी अन्तरंग पीड़ा है, जिसका मूर्तरूप भविष्य के लिए एक वरदान सिद्ध होगा।

प्रकाशित रचनायें : अध्यात्म पूजांजलि, श्री जिनेन्द्र आराधना संग्रह, पाठ संग्रह (अध्यात्म, वैराग्य), भक्ति-भावना, स्वानुभव पत्रावलि, लघु बोध कथाएँ, जीवनपथ दर्शन, बाल भावना, शील निर्देशिका, ब्रह्मचर्य निर्देशिका, आहार निर्देशिका, सदाचरण नियमावली।

विशेष : अनेकों ब्रह्मचारी भाई, बहिनें एवं साधक जीवों के लिए आपका जीवन दीप स्तम्भ की तरह साधना का मार्ग आलोकित कर रहा है और करता रहेगा।

षट्खण्डागम ग्रन्थ की वाचना अनवरत प्रवाहित
तेरहवीं पुस्तक की वाचना 11 नवम्बर 2023 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - आदरणीय बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं सहयोगी भाई-बहिनों तथा मङ्गलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होता है।

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)		**षट्खण्डागम (धवलाजी)**
रात्रि	07.30 से 08.30 बजे तक	मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय
	08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्च्चारण सहित सामान्यार्थ**

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - tm@4321
- youtube channel - theerthdham mangalayatan

के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

मार्च 2024 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

1 मार्च - फाल्गुन कृष्ण 6
श्री सुपार्श्वनाथ ज्ञान कल्याणक
2 मार्च - फाल्गुन कृष्ण 7
श्री सुपार्श्वनाथ निर्वाण कल्याणक
श्री चन्द्रप्रभ ज्ञान कल्याणक
3 मार्च - फाल्गुन कृष्ण 8 **अष्टमी**
4 मार्च - फाल्गुन कृष्ण 9
श्री पुष्पदंत गर्भ कल्याणक
6 मार्च - फाल्गुन कृष्ण 11
श्री आदिनाथ ज्ञान कल्याणक
श्री श्रेयांसनाथ तप कल्याणक
7 मार्च - फाल्गुन कृष्ण 12
श्री मुनिसुव्रतनाथ निर्वाण कल्याणक
9 मार्च - फाल्गुन कृष्ण 14 **चतुर्दशी**
श्री वासुपूज्य जन्म-तप कल्याणक
12 मार्च - फाल्गुन शुक्ल 2-3
श्री अरनाथ गर्भ कल्याणक
16 मार्च - फाल्गुन शुक्ल 7
श्री चन्द्रप्रभ निर्वाण कल्याणक
श्री मल्लिनाथ निर्वाण कल्याणक
17 मार्च - फाल्गुन शुक्ल 8 **अष्टमी**
श्री संभवनाथ गर्भ कल्याणक
अष्टाह्निका व्रत प्रारम्भ
23 मार्च - फाल्गुन शुक्ल 14 **चतुर्दशी**
25 मार्च - फाल्गुन शुक्ल 15 **पूर्णिमा**
अष्टाह्निका व्रत पूर्ण, **होली**
29 मार्च - चैत्र कृष्ण 4
श्री पार्श्वनाथ ज्ञान कल्याणक
30 मार्च - चैत्र कृष्ण 5
श्री चंद्रप्रभ गर्भ कल्याणक

स्वर्णपुरी सोनगढ़ में सम्पन्न

पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की झलकियाँ

(20 जनवरी 2024 से 26 जनवरी 2024)

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

स्वर्णिम अवसर—

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में प्रवेश हेतु

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के आगामी सत्र में (अंग्रेजी माध्यम) कक्षा आठवीं तथा ग्यारहवीं (संस्थागत) के लिए भी सुनहरा अवसर है जो भी छात्र यहाँ के सुरम्य वातावरण में उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का भी लाभ प्राप्त करना चाहते हैं, वे हमारे कार्यालय अथवा वेबसाइट से प्रवेश आवेदन-पत्र मंगाकर अपेक्षित जानकारियों एवं प्रपत्रों के साथ भरकर भेज देवें।

विदित हो कि कम से कम 60 प्रतिशत या उससे अधिक अंक प्राप्त विद्यार्थी ही आवेदन योग्य हैं, स्थान सीमित हैं। अत: शीघ्र ही पूर्ण जानकारी प्राप्त कर आवेदन-पत्र भेजने का अनुरोध है। **अन्तिम तिथि - 10 मार्च 2024।**

तीर्थधाम मङ्गलायतन (प्रवेश फार्म, भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन)
C/o विमलांचल, हरिनगर, गोपालपुरी, अलीगढ़ (उ.प्र.) 202001
सम्पर्क सूत्र-9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री); 8279559830 (उपप्राचार्य)
info@mangalayatan.com; www.mangalayatan.com

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. जयन्तीलाल जैन,मङ्गलायतन वि०वि०

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com